दलितों व शोषितों का पाक्षिक पत्र
विज्ञापन के लिए केन्द्रीय सरकार व राज्यों द्वारा स्वीकृत

हमायती

सम्पादक–डॉ0 सोहनपाल सुमनाक्षर

❑ वर्ष 57 ❑ अंक-14 ❑ दिल्ली ❑ मई 2019 (प्रथम) ❑ मूल्य : 2 रु.

दलित साहित्य पर हमले...

• कंवल भारती

इधर कुछ समय से दलित साहित्य पर गैर दलित लेखकों के हमले काफी तेज हो गये हैं। दिल्ली का एक राष्ट्रीय दैनिक तो इस मुहिम में अपनी विशेष भूमिका ही निभा रहा है। इन हमलावरों में अधिकांशतः वे द्विज लेखक हैं, जिनका दलित लेखकों ने सिंहासन हिला दिया है और साहित्य में जिनकी लीपा–पोती को दलित चिन्तकों ने नंगा करना शुरू कर दिया है। इनमें के. विक्रम राव ने दलित साहित्यकारों को 'जातिवादी' और 'साहित्यिक तालिबान' तक कहकर अपने आक्रोश की भड़ास निकाली है, तो डा. रामदरश मिश्र ने दलित साहित्य को 'साहित्य में आरक्षण' और 'सामूहिक हल्ला गुल्ला' शब्दों से अपमानित किया है। कमलेश्वर भी, जिन्हें दिल्ली के कुछ दलित लेखक दलित विमर्श के पक्ष में काफी महत्व देते हैं, और जो स्वयं भी मराठी दलित लेखन को हिन्दी में लाने का स्वयं को श्रेय देते हैं, हिन्दी दलित लेखन को पूरी तरह नकारते हैं और दलित लेखकों को शम्बूक तथा एकलव्य की मैथालॉजी से निकलने की ही सलाह नहीं देते हैं, बल्कि यह सलाह भी देते हैं कि वे शबरी के प्रकरण में समन्वय के मूल्य को समझें। पिछड़ी जाति के कुछ भटके हुए लेखकों को भी दलित साहित्य गले नहीं उतर रहा है। इनमें एक डा. चन्द्रदेव यादव है, जिनकी दृष्टि में 'हिन्दी का दलित साहित्य साहित्यिक कम, राजनैतिक ज्यादा है', 'क्योंकि उनके अनुसार 'इसकी जमीन राजनीति ने तैयार की है।' उनका दुख यह भी है कि 'इसमें परम्पराओं और प्रचलित मूल्यों के नकार का भाव निहित है।'

परम्परा और प्रचलित मूल्यों से मुझे याद आ रहा है कि दलित और पिछड़ी जातियों के बीच सामाजिक (दासता) स्थितियों का जो अन्तर है, वह साहित्य में रेखांकित हो रहा है। जैसे तोता और तीतर को पालने की व्यवस्थाएं एक जैसी नहीं हैं, वैसे ही वर्ण व्यवस्था में दलित और पिछड़ी (शूद्र) जातियों को दास बनाने की स्थितियां भी एक–जैसी नहीं हैं। जैसे तोते को लोहे के पिंजरे में कैद करके रखा जाता है और यह सावधानी बरती जाती है कि पिंजरे की खिड़की न खुलने पाये, वैसे ही द्विज वर्ग ने दलितों को कठोर प्रतिबन्धों या निषेधाज्ञाओं के बाड़े में कैद करके रखा है, और सदैव इस बात का ध्यान रखा कि इसमें जरा भी ढील न दी जाये और आजादी की कोई भी सम्भावना शेष न छोड़ी जाये। लेकिन, इस प्रकार की कठोरता पिछड़ी जातियों के साथ नहीं अपनायी गयी। उन्हें अस्पृश्यता से मुक्त रखा गया, जैसे तीतर के लिये लोहे का नहीं लकड़ी की सीखों का पिंजरा बनाया जाता है और तीतर पिंजरे से बाहर रहता है। पिछड़ी जातियों के लोग तीर गुलाम है। वे न सिर्फ अस्पृश्यता से मुक्त है, बल्कि उनका पिंजरा भी लोहे का नहीं है। और वे पिंजरे के बाहर भी रहते हैं। इसलिये हिन्दुत्व के प्रति उनका लगाव और झुकाव स्वाभाविक है। परम्पराएं और प्रचलित मूल्य उन्हें अच्छे लग सकते हैं, किन्तु जिस तरह पिंजरे से आजाद हुआ तोता दुबारा कभी पिंजरे में आने की कोशिश नहीं करता, उसी तरह दलित भी हिन्दू बाड़े से निकलने के बाद फिर वापस उसमें कभी नहीं जाता। सारी परम्पराएं और प्रचलित मूल्य फिर उसके लिये कोई अर्थ नहीं रखते। अतः कहना न होगा कि दलित साहित्य पिंजरे से मुक्त हुए तोता गुलामों का साहित्य है, वह हिन्दुत्व का कभी समर्थक नहीं हो सकता।

वास्तव में दलित साहित्य पर द्विज लेखकों के हमलों का सच भी यही है कि वह हिन्दुत्व की सम्पूर्ण विरासत को चुनौती देता है। लेकिन जिस उदारवाद और प्रगतिवाद की आड़ लेकर दलित साहित्य पर ये हमले किये जा रहे हैं, उसकी पृष्ठभूमि में द्विज लेखकों की असली पीड़ा यही है कि जब साहित्य में उनका प्रगतिशील रचनाकर्म मौजूद है, तो दलित लेखकों को अलग धारा चलाने की आवश्यकता क्यों है? ऐसे ही तर्क वर्णव्यवस्था के समर्थन में दिये जाते थे कि जब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य दलितों की मदद के लिये मौजूद हैं, तो दलितों को पढ़ने–लिखने, हथियार रखने और धन कमाने की क्या आवश्यकता है? डा. अम्बेडकर ने इस तर्क का बहुत ही सटीक जवाब दिया था। उन्होंने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'जाति का विनाश'

(शेष पृष्ठ 3 पर)

सम्पादकीय

लोकतंत्र का महापर्व लोकसभा चुनाव

देश में 17वीं लोकसभा के लिए सात चरणों में 11 अप्रैल, 2019 से हो रहे मतदान लोकतंत्र का महापर्व है जो हर पांच साल बाद लोकसभा की अवधि समाप्त होने पर, नई लोकसभा के सदस्यों के चयन के लिए होता है जिससे कि चुनाव में बहुमत से जीता दल देश में अगले पांच साल के लिए अपनी नई सरकार बना सके। वर्तमान में भाजपा की मोदी सरकार की अवधि 26 मई तक है जिस दिन नरेन्द्र मोदी ने 2014 को प्रधान मंत्री की शपथ ली थी और अपनी सरकार बनाई थी।

वर्ष 2014 में जहां लोकसभा के चुनाव में मतदान 9 चरणों में 7 अप्रैल से शुरू होकर 12 मई तक हुआ था और 16 मई को नतीजों का एलान किया गया था

इस बार 2019 के लोकसभा में मतदान 11 अप्रैल से शुरू होकर 7 चरणों में 19 मई को खत्म होगा। सभी चरणों के वोटिंग की गिनती 23 मई को होगी और उसी दिन नतीजों की घोषणा कर दी जायेगी। इसके बाद चुनाव में बहुमत पाने वाला दल या गठबन्धन अपनी सरकार बनायेगा।

2014 को लोकसभा चुनाव के साथ भाजपा ने अपने चुनाव घोषणा पत्र में दावा किया था कि चुनाव में बहुमत पाकर चुनाव जीतने पर अपनी भाजपा सरकार बनते ही वह विदेशों से कालाधन वापिस लायेगी, देश के हर नागरिक के बैंक खाते में 15-15 लाख रु. जमा करायेंगी, हर साल 2 करोड़ बेरोजगार युवाओं को रोजगार देंगी और महंगाई व भ्रष्टाचार खत्म करेगी। किसानों की आय दुगुनी की जायेगी ताकि वे कर्जे के बोझ से दबकर आत्महत्या न करें, सबका साथ–सबका विकास उनकी सरकार का मुख्य नारा होगा जिस पर सख्ती से अमल होगा, देश में आतंकवाद खत्म होगा और देश में अमन और भाईचारे का भय मुक्त वातावरण लाया जायेगा, जिससे कि प्रत्येक नागरिक बिना किसी डर के सुख, शान्ति, वैभव के साथ रह सके।

26 मई, 2014 को नरेन्द्र मोदी ने प्रधानमंत्री की शपथ लेकर अपनी भाजपा सरकार बना ली, उन्होंने अपने उद्योगों को मजबूती से आगे बढ़ाने के लिए 'मेड इन इन्डिया' और युवाओं को उन उद्योग धन्धों में लगाने के लिए 'स्टार्ट अप' शुरू करने की घोषणा की। युवकों को नये उद्योग शुरू करने के लिए बैंकों से 'प्रधानमंत्री–मुद्रा लोन' दिये जाने का भी खूब ढोल पीटा, भाई चारा बढ़ाने के लिए हिन्दू–मुस्लिम की खाई पाटने की बात की, दलित, अल्पसंख्यक, पिछड़ों को सामाजिक समता के स्तर पर लाने के लिए उनके सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक उन्नति के लिए प्राथमिकता के आधार पर कार्य किये जाने का वायदा किया।

क्या प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की उपरोक्त घोषणाओं पर गत पांच सालों में कुछ अमल हुआ, इस पर विचार करने पर पता चलता है कि उनकी ये सब योजनायें सिर्फ ख्याली पुलाव ही दिखाई देती हैं। उनकी मेड इन इंडिया, स्टार्ट अप, मुद्रा लोन सिर्फ भाषण तक सीमित रही, धरती पर उनमें से कोई भी योजना साकार होती नजर नहीं आती। हिन्दू–मुस्लिम की खाई और ज्यादा चौड़ी हुई है। मुस्लमान, दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यकों पर दुराचार, नफरत, पक्षपात, भेदभाव, अन्याय बढ़ा है और उनके बीच सवर्णों के प्रति भय भाव बढ़ा है, गोरक्षा के नाम पर मुसलमानों और दलितों का दमन, प्रताड़ना के साथ उन्हें मौत के घाट तक उतार दिया गया।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भ्रष्टाचार, महंगाई और आतंकवाद रोकने के लिए जो 'नोटबन्दी' की उससे देश के अधिकांश लोगों को फायदे के स्थान पर बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार के साथ कामधन्धों के बन्द हो जाने की परेशानियां झेलनी पड़ी। रही सही लोगों की कठिनाइयों की कसर मोदी की सरकार ने एक समान टैक्स व्यवस्था के नाम पर, जी.एस.टी' (गुड्स एंड सर्विस टैक्स)

(शेष पृष्ठ 2 पर)

भारतीय दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

विश्व धरातल पर दलित साहित्य	डॉ. सुमनाक्षर	50/-
अंधा समाज और बहरे लोग	डॉ. सुमनाक्षर	60/-
सिन्धु घाटी बोल उठी	डॉ. सुमनाक्षर	50/-
अब नहीं रहेंगे हाशिये पर	डॉ. सुमनाक्षर	80/-
अम्बेडकर शतक	डॉ. सुमनाक्षर	50/-
विश्व विभूति डा. अम्बेडकर	डॉ. सुमनाक्षर	50/-
दलित लेखक परिचय ग्रंथ (अंग्रेजी)	डॉ. सुमनाक्षर	250/-
बुद्धा दू अम्बेडकर (अंग्रेजी)	डॉ. सुमनाक्षर	150/-
दलित साहित्य	डॉ. सुमनाक्षर	100/-
अम्बेडकर दर्शन	डॉ. सुमनाक्षर	40/-
हमारे संत और समाज सुधारक	डॉ. सुमनाक्षर	60/-
धर्म और समाज	डॉ. सुमनाक्षर	40/-
आदिम जाति चमार (इतिहास, धर्म, संस्कृति)	डॉ. सुमनाक्षर	300/-
दलित उद्घोष	डा. सुमनाक्षर	80/-
दलित साहित्य की हुंकार-सात समन्दर पार	डॉ. सुमनाक्षर	100/-
युगपुरुष बाबू जगजीवनराम	डॉ. सुमनाक्षर	200/-
प्राचीन आदिम जाति वाल्मीकि (इतिहास, धर्म, संस्कृति)	डॉ. सुमनाक्षर	100/-
सभ्यता, संस्कृति, समाज और साहित्य	आचार्य गुरुप्रसाद	100/-
डा. अम्बेडकर भजनावली	राजमल 'राज'	25/-
हमारे दलित गौरव	राजमल 'राज'	25/-
भारत रत्न डा. बी.आर. अम्बेडकर	राजमल 'राज'	25/-
मूल भारती से दलित	राजमल 'राज'	50/-
अम्बेडकरवाद बनाम सामाजिक परिवर्तन	राजमल 'राज'	80/-
दलित साहित्य–दशा और दिशा	डा. माता प्रसाद	200/-
दलित साहित्य से सामाजिक परिवर्तन	डा. माता प्रसाद	100/-
भारत की गुलामी के 22 सौ साल	प्रदीप कुमार मौर्य	250/-
सृजन के कण	जीपी पचौरिया 'दीप'	150/-
बौद्ध धर्म–गया से अयोध्या तक	प्रदीप कुमार मौर्य	120/-
गांधी, अम्बेडकर और दलित	प्रदीप कुमार मौर्य	100/-
सत्सम दर्शन	राजमल 'राज'	100/-
जागा मेहनतकश इंसान	राजमल 'राज'	50/-
हम एक हैं	डा. माता प्रसाद	60/-
रैदास से संत शिरोमणि गुरु रविदास	डा. माता प्रसाद	50/-
ताकि सनद रहे	डा. सुमनाक्षर	100/-

पुस्तक मंगाने के लिए मनीआर्डर से राशि अग्रिम भेजें, व्यवस्थापक,

दलित साहित्य सेन्टर

(भारतीय दलित साहित्य अकादमी)

बी-3/9, दूसरी मंजिल, माडल टाउन-1, दिल्ली-9

फोन : 27421449, 27421460, मो. 9810278936

सम्पादकीय का शेष....लोकतंत्र का महापर्व-लोकसभा चुनाव

लागू करने पर पूरी हो गई। लगता है कि सर्व सत्तावान हो जाने के कारण प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने न तो अपनी किसी योजना को लागू करने के बाद उसके परिणामों की समीक्षा की और न ही किसी अनुभवी विशेषज्ञ की सलाह को स्वीकारा। इसी का कारण है कि मोदी सरकार की कोई भी योजना जनकल्याणकारी साबित नहीं हुई और न ही उनके कार्यकाल में देश का विकास नजर आ रहा है। उल्टे देश में भय, भ्रष्टाचार महंगाई, आतंकवाद बढ़ा है और लोगों के अन्दर असहिष्णुता, डर, अविश्वास पैदा हुआ है। पुलवामा में सी.आर.पी. के जवानों पर पाकिस्तानी आतंकवादियों के हमले ने तो मोदी सरकार के खुफिया तंत्र की पोल खोलकर रख दी, जिसमें हमारे 44 सैनिक शहीद हो गये। मोदी जी ने अपनी सरकार की इस खुफिया तंत्र की नाकामयाबी की जिम्मेदारी लेने के स्थान पर इसके जवाब में सेना द्वारा पाकिस्तान पर की गई 'सर्जिकल स्ट्राइक' की कामयाबी का सहेरा अपने सिर पर 'जोर–जोर' से चुनावों में चिल्लाकर खुद ले लेने की ठान रखी है।

2014 के लोकसभा के चुनाव में नरेन्द्र मोदी ने कांग्रेस की डा. मनमोहन सिंह सरकार पर खूब भ्रष्टाचार के आरोप लगाये और कहा था कि उनकी सरकार आने पर वे भ्रष्टाचारियों को जेल भिजवायेंगे, पर नरेन्द्र मोदी की सरकार अपने पांच सालों में न तो कांग्रेस की सरकार पर किसी भ्रष्टाचार के होने का आरोप सिद्ध कर सकी और न ही वह किसी कांग्रेसी नेता को जेल भेज सकी। उल्टे मोदी सरकार, पर भ्रष्टाचार के अरोप लग रहे है कि जिस 'राफेल; हवाई जहाज को कांग्रेसी सरकार कम कीमत पर खरीदना चाहती थी, उसे नरेन्द्र मोदी ने उस 'राफेल' की खरीद कीमतों में बढ़ोतरी करके अपने मित्र अनिल अबानी को उसका ठेका दिला दिया जिससे उसे 30 हजार करोड़ का फायदा मोदी जी ने करा दिया। अब यह मामला सुप्रीम कोर्ट में विचाराधीन है।

भारत में लोकतंत्र के इस महापर्व पर अब से पहले के 16वीं लोकसभा के चुनावों तक सभी राजनैतिक दल मुद्दों, नीति, योजनाओं के नाम पर चुनाव लड़ते थे, पर अब इस 17वीं लोकसभा के चुनाव में मुद्दे, उपलब्धियां, नीति, योजनाये सब गायब हैं। सत्तारूढ़ भाजपा की नरेन्द्र मोदी सरकार अपनी पांच साल की उपलब्धियों, जनता के असली मुद्दों, भावी जनकल्याणकारी योजनाओं जैसे कार्मों से जी चुरा रही है और वह इन पर बहस करने से बचना चाहती है। वह जानती है कि गत पांच सालों में नोटबन्दी, जी.एस.टी. रोजगार, भ्रष्टाचार, आतंकवाद पर बोलती तो बहुत रही, पर उस पर न तो कारगर काम किया और न ही उनसे जनता को कुछ लाभ पहुंचा। उल्टे जनता को नई नई परेशनियां झेलनी पड़ीं। मोदी जी के कार्यकाल में भ्रष्टाचार तो मिटा नहीं, उल्टे विजय माल्या, नीरव मोदी, मेहुल चौकसी हजारों करोड़ रुपया बैंकों का मारकर विदेशों में भाग गये। इस तरह भाजपा की मोदी सरकार देश के कल्याण, सामाजिक उत्थान, जनसेवा के मुद्दों पर पूर्ण तरह फेल रही है।

लोकतंत्र के इस महापर्व पर देश में 543 लोकसभा सीटों के लिए सात चरणों में मतदान हो रहा है। 11 अप्रैल को पहला मतदान हुआ, उसके बाद 18, 23, 29 अप्रैल एवं 6, 12, 19 मई को मतदान होने के बाद 23 मई को मतों की गिनती करने के बाद उसी दिन नतीजों की घोषणा कर दी जायेगी तत्पश्चात् नई सरकार के गठन की प्रक्रिया शुरू हो जायेगी।

लोकतंत्र के इस महापर्व पर मतदान का बहुत महत्व है। और मतदान में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है उसमें दिया जाने वाला मत (वोट) यह वोट का अधिकार दिया है बाबा साहब डा. अम्बेडकर द्वारा निर्मित भारतीय संविधान ने। भारतीय संविधान की दृष्टि में सभी भारतीय नागरिक समान है। राष्ट्रपति भवन में रहने वाले राष्ट्रपति और गाँव की झोंपड़ी में रहने वाला गरीब मजदूर को एक समान एक वोट का अधिकार है। यही भारतीय संविधान की खूबसूरती है जहां एक राष्ट्रपति के वोट की कीमत उतनी ही है जितनी एक गरीब व्यक्ति के वोट थी। यह वोट की ताकत दी है हमें बाबा साहब डा. अम्बेडकर ने। इस वोट के अधिकार को दिलाने के लिए बाबा साहब डा. अम्बेडकर ने काफी संघर्ष किया। देश की अंग्रेजी हुकूमत से। उन्हें जब अंग्रेजी सरकार ने दलितों के प्रतिनिधि के रूप में इंगलैंड की राउंड टेबुल कान्फ्रेस में आमंत्रित किया और अपना पक्ष रखने का कहा तो बाबा साहब डा० अम्बेडकर ने सिंह गर्जन करते हुए कहा कि जब इंगलैंड में ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत सभी नागरिकों को समान अधिकार मिले हैं, वोट का अधिकार है निर्वाचन में। सरकार में सभी वर्ग का एक समान प्रतिनिधित्व मिला है तो फिर भारत में उनकी ब्रिटिश सरकार में वहां के अछूतों (दलितों) को वोट का अधिकार क्यों नहीं है, उनका सरकार में उनकी आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व क्यों नहीं है? केवल कुछ राजा महाराजा, जमींदारों, साहूकारों, उच्च वर्णों को निर्वाचन में सरकार चुनने के लिए जो 'वोट' का अधिकार दिया गया है वह भारत के अछूतों (दलितों) को भी मिलना चाहिए।

बाबा साहब डा. अम्बेडकर की मांग से ब्रिटिश अंग्रेजी सरकार सहमत थी। इसलिए उसने राउंड टेबुल कान्फ्रेंस खत्म होने के कुछ दिनों बाद 'कम्युनल अवार्ड' के अन्तर्गत घोषणा कर दी कि भारत के अछूतों को 'दो वोट' देने का अधिकार दिया जाता है, इसके एक वोट से वे अपने अछूत प्रतिनिधि को चुनेंगे और दूसरे वोट से वे सवर्ण प्रतिनिधि को चुनेंगे। इसके लिए अछूतों को पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाये जायेंगे।

भारत के दलितों (अछूतों) को 'दो वोट' का अधिकार और उनके लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाने की घोषणा से महात्मा गांधी विचलित हो गये और उन्होंने दलितों को मिले इस पृथक मताधिकार के खिलाफ पुणे की यरवदा जेल में आमरण अनशन की घोषणा कर दी। बाबा साहब डा. अम्बेडकर पर दबाव पड़ा की वे अंग्रेजों द्वारा अछूतों को दिये 'कम्युनल अवार्ड' के विशेषाधिकारों को लौटा दे जिससे गांधी जी के प्राण बच सकें। बाबा साहब डा. अम्बेडकर के सामने देश के कांग्रेसी नेताओं और समाज सेवकों ने एक समझौता दस्तावेज रखा, जिसे बाद में गांधी जी व बाबा साहब डा. अम्बेडकर के बीच हुए समझौते यानी 'पूना पैक्ट' का नाम दिया गया। गांधी जी के प्राण बचाने के लिए बाबा साहब डा. अम्बेडकर ने इस समझौते को स्वीकारते हुए इस पर अपने दस्तख्त कर दिये। इसके बाद इसे 'पूना पैक्ट' का नाम दिया गया। इसके अन्तर्गत भारत के अछूतों (दलितों) को चुनाव में एक वोट देने का अधिकार दिया गया। साथ ही निर्वाचन, सरकारी नौकरियों, शिक्षण संस्थाओं में उनकी आबादी के अनुपात में 'आरक्षण कोटा' निर्धारित किया गया। इस पूना पैक्ट (समझौते) के अन्तर्गत दिये अछूतों (दलितों) के वोट के अधिकार निर्वाचन, सरकारी नौकरियों, शिक्षण संस्थाओं में उनकी आबादी के अनुपात में दिये गये 'आरक्षण कोटा' को बाबा साहब डा. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान में

अजन्मी बेटियों के बगैर

• पीयूष द्विवेदी

देश में विषम लिंगानुपात की समस्या और इस पर चर्चा, दोनों ही पुरानी है, मगर वर्तमान समय में जब शिक्षित हो रहे भारतीय समाज में लड़का–लड़की के बीच भेदभाव नहीं करने को लेकर सरकार से समाज तक की तरफ से प्रयास हो रहे हैं और माना जा रहा था कि स्थिति सुधर रही है, ऐसे समय में लिंगानुपात से संबंधित नीति आयोग की ताजा रिपोर्ट हमें पुनः सोचने पर विवश करती है। 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' जैसी पहलों के द्वारा बेटियों को एक गरिमामय जीवन देने की कोशिशों में जुटी केन्द्र सरकार के लिए भी नीति आयोग की रिपोर्ट आईने की तरह है। 'हेल्दी स्टेटस ऐंड प्रोग्रेसिव इंडिया' नामक अपनी इस रिपोर्ट में नीति आयोग ने देश के इक्कीस राज्यों की लिंगानुपात संबंधी स्थिति स्पष्ट की है। इक्कीस बड़े राज्यों में से सत्रह राज्यों में जन्म के समय लिंगानुपात में गिरावट दर्ज की गई है। गुजरात इसमें शीर्ष पर है, जहां जन्म के समय लिंगानुपात में 53 अंकों की भारी गिरावट सामने आई है। इसके बाद क्रमशः हरियाणा में 35, राजस्थान में 32, उत्तराखंड में 27, महाराष्ट्र में 18, हिमाचल में 14, छत्तीसगढ़ में 12 और कर्नाटक में 11 अंकों की गिरावट का आंकड़ा नीति आयोग ने अपनी रिपोर्ट में प्रस्तुत किया है। संतोषजनक बात यह है कि उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में लिंगानुपात की स्थिति में सुधार आया है। लेकिन शेष राज्यों में विषम लिंगानुपात की स्थिति आधुनिकता और प्रगतिशीलता का दम भरने वाले भारतीय समाज के समक्ष यह गंभीर प्रश्न खड़ा करती है कि क्या आधुनिक होने का समस्त प्रदर्शन सिर्फ भौतिक धरातल पर ही है? क्या लोग मानसिक तौर पर अब भी लड़का– लड़की में भेदभाव की मध्यकालीन सोच से ही ग्रसित है? नीति आयोग ने अपनी रिपोर्ट में केवल समस्या पर बात नहीं की है, समाधान बताने का भी प्रयास किया है। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में भ्रूण के लिंग परीक्षण और चयन संबंधी कानून की सख्ती से लागू किए जाने की बात कही है। समझ सकते हैं कि नीति आयोग ने कानून को सख्ती से लागू करने की बात कहकर समाधान बताने की सिर्फ औपचारिकता पूरी की है क्योंकि चाहे जितनी सख्ती बरती जाए, यह समस्या केवल कानून से समाप्त नहीं हो सकती।

दरअसल, प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण लोगों के जीवन से जुड़ी ऐसी स्थिति है कि उस तक कानून की पहुंच और कानून के दखल को व्यावहारिक बना पाना बहुत सारे मामलों में बहुत मुश्किल होता है। भ्रूण के लिंग परीक्षण के बहुत ही कम मामले संज्ञान में आ पाते हैं। प्रायः पति–पत्नी की परस्पर सहमति से ये परीक्षण इतने गुपचुप ढंग से करवाए जाते हैं कि पड़ोसियों तक को भनक नहीं लग पाती है, कई बार परिवार के अन्य सदस्य भी नहीं जान पाते हैं। ऐसा करने वाले डाक्टरों का भी अभाव नहीं है। गली–गली में क्लीनिक खोल कर बैठे ऐसे बहुत से डॉक्टर मिल जाएंगे, जिन्हें ये परीक्षण करने में कोई हिचक नहीं होती। ऐसी स्थिति में कानून के लिए इस समस्या पर काबू पाना कितना कठिन है, यह आसानी से समझ सकते हैं।

इस संदर्भ में अगर संबंधित कानून पर भी एक दृष्टि डालें तो भ्रूण के लिंग की जांच और कन्याभ्रूण हत्या पर अंकुश लगाने के लिए 1994 में 'गर्भधारण पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम' नामक कानून बनाया गया, जिसके तहत प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण को अपराध की श्रेणी में रखते हुए सजा का प्रावधान भी किया गया। इस कानून के तहत लिंग परीक्षण व गर्भपात आदि में सहयोग करने को भी अपराध की श्रेणी में रखा गया है तथा ऐसा करने पर तीन से पांच साल तक कारावास व अधिकतम एक लाख रुपये जुर्माने की सजा का भी प्रावधान किया गया है। लेकिन यह कानून लागू होने के कारण तकरीबन बीस वर्ष बाद भी, भ्रूण परीक्षण व कन्याभ्रूण हत्या पर कोई विशेष अंकुश लग पाया हो, ऐसा नहीं कह सकते।

आंकड़ों पर गौर करें तो 2011 की जनगणना के अनुसार, देश में छह साल तक की आबादी में प्रति 1000 बच्चों पर महज 914 बच्चियां पाई गईं। छह साल तक के बच्चों में यह लैंगिक असमानता कहीं न कहीं दिखाती है कि देश में कन्याभ्रूण हत्या का सिलसिला जारी है। नीति आयोग की ताजा रिपोर्ट के आंकड़े भी इसी की पुष्टि करते हैं। अब यह जाहिर हो चुका है कि केवल कानून के बल पर इस समस्या से कारगर ढंग से नहीं निपटा जा सकाता। ऐसे में प्रश्न उठता है कि इस समस्या का और क्या समाधान हो सकता है?

अगर विचार करें तो भ्रूण परीक्षण और कन्याभ्रूण हत्या के इस सिलसिले के मूल में हमारी तमाम सामाजिक रुढ़ियां मौजूद हैं। आज के इस आधुनिक व प्रगतिशील दौर में लड़कियां न केवल लड़कों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं, बल्कि कई मायनों में लड़कों से आगे भी हैं। इसमें संदेह नहीं कि लड़कियों के इस उत्थान से समाज में उनके प्रति व्याप्त सोच में काफी बदलाव भी आया है। लेकिन बावजूद इस सबके, आज भी हमारे समाज का एक बड़ा हिस्सा उनके प्रति अपनी सोच को पूरी तरह से बदल नहीं पाया है। यह सही है कि इसमें अधिकांश ग्रामीण व अशिक्षित लोग ही हैं, लेकिन शहरी व शिक्षित लोग भी इससे एकदम अछूते नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर देखें तो कम से कम दहेज जैसी प्रथा की चपेट में तो भारतीय समाज के शिक्षित–अशिक्षित, सब बराबर हैं। भ्रूण परीक्षण व कन्या भ्रूण हत्या के पीछे यह रुढ़िवादी प्रथा एक बहुत बड़ी वजह है।

इसी प्रकार और भी तमाम ऐसी सामाजिक प्रथाएं, कायदे और बंदिशें हैं जो कन्या भ्रूण हत्या जैसी बुराई को उपजाने और उसे बनाए रखने में खाद–पानी का काम कर रही हैं। इन बातों को देखते हु कह सकते हैं कि कन्या भ्रूण हत्या आपराधिक प्रवृत्ति से अधिक कुछ सामाजिक कुप्रथाओं की निरंतरता और उनके प्रश्रय से उत्पन्न हुई बुराई है। अतः यह स्पष्ट है कि इसका समाधान भी सिर्फ कानून के जरिए नहीं किया जा सकता। इस बुराई के समूल खात्मे के लिए आवश्यक है कि इसको लेकर सामाजिक स्तर पर जागरूकता लाने का प्रयास किया जाए।•

दर्ज कर, इसे संवैधानिक अधिकार बना दिया।

आज जो निर्वाचन में वोट देने का अधिकार दलितों को मिला है, वह बाबा साहब डा. अम्बेडकर के निरन्तर किये गये संघर्ष का फल है, इसलिए हमें इसको अमूल्य समझकर इसका उपयोग करना चाहिये जिससे कि हमारा प्रतिनिधित्व करने वाला प्रतिनिधि ठीक व्यक्ति चुनकर जाये। इसलिए प्रत्येक राजनैतिक पार्टी, उसके चुनाव में खड़े उम्मीदवारों को अच्छी तरह जांच पड़ताल करने के बाद ही हमें अपने अमूल्य 'वोट' का इस्तेमाल करना होगा जिससे अगले पांच सालों में उससे हम अपने 'समाज की उन्नति, विकास, कल्याण के लिए काम ले सकें।

लोकतंत्र के इस महापर्व में हमें वोट देने से पूर्व बाबा साहब डा. अम्बेडकर, उनके बनाये भारतीय संविधान, वोट की कीमत को ध्यान में करके ही मतदान के मन्दिर में जाकर अपना 'वोट' दें और देश के लोकतंत्र को और मजबूत बनाये। इससे देश में स्वच्छ, लोककल्याणकारी सरकार हम ला पायेंगे। •

– डा. सुमनाक्षर

पृष्ठ 1 का शेष....दलित साहित्य पर हमले...

(ऐनिहिलेशन आफ कास्ट) में लिखा है–'यह एक सरल, बड़प्पन की भावना वाला और आकर्षक सिद्धान्त लगता है। पर, यह दुर्भावना और दोष रहित नहीं है। अगर अन्य तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने धर्म का निर्वाह तो करते हैं, पर शूद्र की सहायता को तैयार नहीं होते हैं, तो क्या होगा? यदि वे शूद्रों की अज्ञानता का लाभ उठाने की कोशिश करते हैं, तो शूद्रों के हितों की रक्षा कौन करेगा? विभिन्न वर्गों का एक–दूसरे से सहयोग अवश्यम्भावी है। पर अपनी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं के लिये कोई व्यक्ति दूसरे पर निर्भर क्यों रहे? प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित किया जाना चाहिए। हर व्यक्ति में अपनी रक्षा की क्षमता होनी चाहिए। एक अशिक्षित और अपनी रक्षा में अक्षम व्यक्ति को एक विद्वान और हथियारबन्द पड़ोसी से कैसे मदद मिल सकती है? यह पूरा सिद्धान्त ही वाहियात है।''

द्विज लेखक भी आज इसी वाहियात सिद्धान्त की वकालत कर रहे हैं कि जब वे मौजूद हैं दलितों के लिये लिखने को, तो दलितों को लिखने की क्या जरूरत है? उन्होंने जो दलितों पर लिखा है या बीते समय में प्रेमचन्द और निराला आदि दलितों पर जो लिख गये हैं, उसी को दलित अपना साहित्य मानें और उन लेखकों को अपना मसीहा स्वीकार करें। लेकिन ऐसा हरगिज–हरगिज नहीं हो सकता। हजारों साल के इतिहास में ऐसा हरगिज नहीं हुआ, तो आज क्या, यह कल भी हरगिज नहीं हो सकता। यह देवासुर संग्राम है, जिसमें देवता अर्थात द्विज छल–बल से भले ही हमेशा विजयी रहे हैं, पर न्याय और सिद्धान्त के क्षेत्र में असुरों अर्थात् दलितों का पक्ष हमेशा सशक्त रहा है। दलित साहित्य इसी संग्राम का हिस्सा है। यह कल का आविष्कार नहीं है। इसका उद्भव भी उसी काल खण्ड से होता है, जिस कालखण्ड से द्विजों का इतिहास आरम्भ होता है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में विरोध की एक धारा समानान्तर चली है। यह धारा ही दलित चिन्तन की धारा है। आज का दलित साहित्य इस चिन्तन धारा का विकास है। द्विज लेखक इस धारा को नहीं समझ सकते, क्योंकि इस धारा के साथ उनका सांस्कृतिक संघर्ष है।

जिस प्रगतिशीलता की दुहाई देकर द्विज लेखकों द्वारा दलितों को अपना लेखन बन्द करने को कहा जा रहा है, उसके लिये वर्ण–व्यवस्था के समर्थकों को दिया गया डा. अम्बेडकर का उपर्युक्त जवाब ही सटीक हो सकता है। इस आधार पर दलित साहित्य की आलोचना द्विज लेखक दो कारणों से करते हैं। पहला और बड़ा कारण दलित साहित्य को कल की घटना मानते हैं। दूसरा कारण तो वर्ण व्यवस्था ही है, जिसे दलित लेखन बराबर तोड़ रहा है। इससे साहित्य के प्राचीन मूल्य और प्रतिमान ही ध्वस्त नहीं हो रहे हैं, बल्कि सेमीनारों आदि में द्विज लेखकों के बराबर दलित लेखकों के बैठने से उच्चता के उनके जन्मजात अधिकार भी खतरे में पड़ गये हैं। (इसीलिये, इधर अब दलित सवालों पर दलित लेखकों के साथ संवाद और सेमिनार के आयोजन काफी हद तक बन्द भी हो गये हैं।)

सवाल गैर दलित लेखकों के दलित लेखन को नकारने का नहीं है। दलित लेखक यह सवाल उठाते भी नहीं हैं। वे जो सवाल उठाते हैं, उसे समझने की कोशिश गैर दलित लेखक करते ही नहीं हैं। यहां दो बातों पर गौर करने की जरूरत है। एक यह कि गैर दलित लेखकों या द्विज लेखकों या प्रगतिशील लेखकों ने दलित समस्या पर अपनी ईमानदार भूमिका नहीं निभायी। दलितों पर उनका लेखन गरीबी के सवाल ज्यादा उठाता है, जाति के नहीं। उनके लेखन में वर्ण व्यवस्था के खिलाफ कोई विद्रोह नहीं है। केवल अत्याचारों को दर्शाना, अस्पृश्यता का चित्रण या दलित जातियों में रखैलें तलाश करना दलितों के पक्ष का लेखन नहीं हो सकता। दूसरी बात यह गौर करने की है कि दलितों पर जो लिखा गया है, उसका मूल्यांकन तो दलित ही कर सकते हैं। अतः दलितों के लिये गैर दलितों का लेखन महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि उन्होंने क्या लिखा है? दलितों के लिये लेखन और दलितों की दृष्टि से लेखन में अन्तर है। गैर दलितों अथवा द्विजों का 'दलितों के लिये दलित लेखन' हो सकता है। वह 'दलितों की दृष्टि से दलित लेखन' नहीं है। अगर घीसू और माधव के हाथ में कलम होती, तो उनकी कलम से 'कफन' का यथार्थ कुछ और ही होता। अगर चतुरी चमार को लिखना आता होता, तो उसका लिखा हुआ 'निराला' ही निराला को स्थापित करता। अगर रामरती के हाथ में भी कलम होती, तो वह लिखती, 'एक थी शिवानी', और तब उच्चता के आसन पर बैठकर लिखी गयी शिवानी की कृति 'एक थी रामरती' एक पाखण्ड बन चुकी होती।

दलित साहित्य पर गैर दलित लेखकों के हमले ज्यादातर इस बात को लेकर हैं कि 'दलित, दलितों द्वारा रचित साहित्य को ही एक विशिष्ट पहचान देने की कोशिश क्यों कर रहे हैं?' यानी वे गेर दलितों द्वारा लिखे गये साहित्य को दलित साहित्य के अन्तर्गत क्यों स्थान देना नहीं चाहते? गैर दलित लेखकों की इस चिन्ता का समाधान उपर्युक्त कथन से अवश्य हो जाना चाहिए। पर, यदि इसके बाद भी नहीं होता है, तो मेरी उनको नम्र सलाह है कि वे दलित साहित्य के प्रति अपने अज्ञान को दूर करने के लिये भारतीय वाङमय में दलित चिन्तन की सम्पूर्ण परम्परा का अध्ययन करें। साहित्य की नौटंकी करना बन्द करके उस धारा को समझें, जो अपने उद्भव काल से ही पृथक अस्तित्व बनाकर चली है और जिसने द्विज धारा को कभी मान्यता नहीं दी है।•

(नोट–दलित साहित्य पर कंवल भारती ने यह लेख लगभग 30 साल पहले लिखा था जब हिन्दी में दलित साहित्य की शुरुआत की गई थी, पर अब पिछले 34-35 सालों में दलित साहित्य न केवल हिन्दी में बल्कि सभी भाषाओं में स्थापित होकर विश्वव्यापी हो गया है–सम्पादक)

गौतम बुद्ध का संदेश : आज अधिक प्रासंगिक

• ओ.एल. लोहखंडे

दुनिया का हर प्राणी सुख चैन चाहता है। शांति किसे नहीं चाहिय, लेकिन वास्तविकता में हर कोई दुखी है, बेचैन है, किसी को इस बात का दुख है तो किसी को उस बात का। गरीब अभाव के कारण दुखी है तो धनी तनावग्रस्त होकर दुखी है। व्यक्ति इतना अधिक स्व–केन्द्रित हो गया है कि उसे अपना ही दुख सबसे बड़ा लगता है। वह चाहता है कि उसके दुःख में दूसरे भी सहभागी हों। अर्थात् दुःखी व्यक्ति ऐसा करके दुःख ही बांटता है। दूसरों को भी दुःखी करता है। जिसके पास जो होगा वही तो दूसरों को दे सकता है। जो स्वयं सुखी न हो वह दूसरों को सुख कैसे बांटेगा? इसलिये जीवन की सार्थकता इसी में है कि 'सुख' का बैंक बैलेंस बढ़े और इतना बढ़े कि इसे दूसरों को बांट सकें। 'सुख' का तात्पर्य भौतिक आमोद प्रमोद से ऊपर उठकर मानसिक सुख शांति से हैं, परस्पर मैत्री और करुणा भाव है।

लोकतंत्र में तो हर व्यक्ति अपना जीवन अपने ढंग से जीने के लिये स्वतंत्र है। लेकिन वर्तमान में स्वतंत्रता की परिभाषा स्वच्छंदता के रूप में विकृत हो गई है। गणतंत्र में तो व्यक्ति अधिक सुखी और निर्भय होकर जीने की कामना करता है। लेकिन वास्तविकता क्या है? आधुनिक भौतिक सुख की मीठी सतह के भीतर व्यक्ति का मन दुख और भय से संतप्त है, द्वेष और आपसी बैर भाव से व्याप्त है। उस अंधेरे में हमें ऐसे मार्गदर्शक प्रकाश की आवश्यकता है, जो व्यवहारिक होकर सभी ग्रामों, सभी शहरों, सभी प्रान्तों और सभी देशों के सभी संप्रदायों को सभी वर्गों को स्वीकार्य हो। दुनिया में कई संत, ऋषि, मुनि, महापुरुष हुए जिन्होंने मानव समाज को दिशा बोध कराया। ऐसे ही एक व्यक्ति थे सिद्धार्थ गौतम बुद्ध जो तथागत थे।

तथागत इसलिय क्योंकि तथागत गौतम बुद्ध का जीवन काल्पनिक कर्मकांड पर आधारित न होकर संसार की वास्तविकताओं से परिपूर्ण रहा। वे वही करते थे, जो वे कहते थे और जो कहते थे वे स्वयं के अनुभूति पर आधारित रहते थे। उन्होंने 'पंचशील' का प्रतिपादन किया और जीवन भर इसका पालन करते हुए उसका प्रचार प्रसार करते रहे। जीवन यापन के लिये उन्होंने जो आदर्श आचार संहिता अपनाया उसे 'पंचशील' कहा। इसके अंतर्गत उन्होंने कहा कि जीव हत्या नहीं करूंगा। चोरी नहीं करूंगा। धारक की अनुमति के बिना मैं बलपूर्वक या छलपूर्वक उस वस्तु को नहीं लूंगा या उसका उपभोग नहीं करूंगा। व्यभिचार नहीं करूंगा। झूठ नहीं बोलूंगा, छलकपट नहीं करूंगा। कोई नशा, व्यवसन नहीं करूंगा, सुरा, नशीले पदार्थ जैसे तम्बाकू, अफीम, गांजा आदि का सेवन नहीं करूंगा, जुआ आदि नहीं खेलूंगा।

बुद्ध बनकर उन्होंने यही शिक्षा दी कि प्रकृति के शाश्वत् नियमों का पालन करो। चित्त को सदा निर्मल रखते हुए आचरण करो। अपनी वाणी या शरीर से ऐसा कुछ मत कहो या करो जिससे दूसरे प्राणी को कष्ट हो या अहित हो। वही कहो और वही करो, जिससे दूसरों को सुख और शांति मिलती हो, परस्पर मैत्री और करुणाभाव बना रहता हो। इसी आचार और व्यवहार को उन्होंने धर्म कहा और इसके विपरीत आचार व्यवहार को अधर्म।

उन्होंने धर्म और अधर्म की कितनी स्पष्ट और सरल भाषा दी जो समाज के हर व्यक्ति को चाहे वह ज्ञानी हो या अज्ञानी, शिक्षित हो या अशिक्षित, अमीर हो या गरीब, नारी हो या पुरुष, स्वस्थ हो या अस्वस्थ, इस गांव का हो या परदेश का हो, सभी को सहजता से समझने की योग्यता थी, है और भविष्य में भी रहेगी। धर्म की यह परिभाषा कितनी उपयुक्त और सर्वग्राहय है। धर्म की सही परिभाषा समझकर धर्म धारण करके हर व्यक्ति निर्भय और निर्भर होकर तनावमुक्त जीवन जी सकता है। लेकिन आज समाज में व्याप्त विकृतियों को झेलने के लिये विवश हो गया है। व्यक्ति का धार्मिक न होकर सांप्रदायिक हो जाना ही इस विवशता का मूल है। स्थान विशेष की आवश्यकताओं पर आधारित सामाजिक आचार व्यवहार को संप्रदाय या पंथ कहने के बदले इसे अलग–अलग धर्म मानकर विश्व के समस्त प्राणी भ्रमित हैं। सांप्रदायिक समूहों का चोला तो अलग–अलग हो सकता है, जिसके प्रतीक विशेष प्रकार की वेशभूषा, बोली रीति रिवाज हो सकते हैं। लेकिन धर्म तो शाश्वत, सार्वजनीन, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है। जैसे गन्ना चाहे अमेरिका का हो, रूस का या चीन का हो, भारत का हो या पाकिस्तान का हो, गन्ना मीठा ही होगा, किसी भी गन्ने के नीम का गुणधर्म (कड़वापन) नहीं होगा। यदि गन्ने में मिठास नहीं है तो वह गन्ना नहीं, गन्ने के नाम पर कुछ और है, धोखा है। विश्व के हर कोने के सभी के लिये चाहे वे किसी भी संप्रदाय के हों, चाहे भारतीय हों, या पाकिस्तानी, रूसी हों या अमेरिकी, हिन्दू हों या मुस्लिम हों, सिक्ख हों, जैन हों, पारसी हों या ईसाई हों, आग सबके लिये आग है, जिसका गुणधर्म जलना और जलाना है, उष्णता देना है।

कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि आग उसे उष्णता के बदले इसलिये शीतलता देगी, क्योंकि वह एक संप्रदाय विशेष को मानता है या विशेष देश का रहवासी है। प्रकृति के शाश्वत नियम ही धर्म हैं। आम का बीज बोने पर आम ही उपजेगा, नीम नहीं। नीम का बीज बोकर आम के फल की आशा करना व्यर्थ है चाहे फिर कितनी भी खाद दें या कितनी भी सिंचाई करते रहें।

गौतम बुद्ध का प्रकृति आधारित सोच ही आज के विश्वव्यापी तनाव और अहिष्णुता आधारित अशांति दूर करने का इलाज है। वर्तमान में व्याप्त अशांति और तनाव का कारण राजनीतिक हो, आर्थिक हो, सांप्रदायिक हो, या अहं आधारित हो, सबका समाधान तथागत गौतम बुद्ध की शिक्षा और मार्गदर्शन में निहित है। यह पूर्ण रूप से व्यवहारिक है, क्योंकि उनकी चिंता जीवन की वास्तविकताओं पर आधारित है, और प्रत्यक्ष रूप से अनुभूत है। अनुभूति के आधार पर ही उन्होंने यह सिद्ध किया कि हर प्राणी के जीवन में दुःख का अस्तित्व है, दुःख का कारण (तृष्णा, राग, द्वेष) भी उन्होंने अनुभूति द्वारा ही पुष्ट किया। उन्होंने यह भी तथ्य अनुभूति के द्वारा उजागर किया कि दुःख का निदान और छुटकारा संभव है। इसके फलस्वरूप, मैं और मेरा के अहं भाव से उबरकर निर्भय, निर्बैर, सदभावी और सौहार्दपूर्ण मैत्रीमय जीवन यापन संभव है। •

हिमायती
4 / मई (प्रथम), 2019 (कुल पृष्ठ 4)
पोस्टल डिस्पेच तिथि : 1-2 मई, 2019

आर. एन. आई. नं. 40611/62
रजि. G-3/DL(N)/090/2018-2020
प्रकाशन तिथि : 28 अप्रैल, 2019

दलितों की उपेक्षा का परिणाम

• राम चन्द्र राम (बिहार)

भारतीय दलित साहित्य अकादमी दलितों की उपेक्षा का परिणाम है। भारतीय साहित्यकारों ने यदि दलितों की उपेक्षा न की होती तो इस अकादमी की स्थापना की आवश्यकता न होती। भारत की सामाजिक संरचना एवं संस्कृति ऐसी है कि कुछ समुदाय की उपेक्षा छाया की तरह साथ नहीं छोड़ती। उपेक्षा से छुटकारा दिलाने के लिए सभी समाजसेवियों और साहित्यकारों को इस दिशा में सजग रहने की आवश्यकता है।

आज तीन महापुरुषों के सिद्धांत और सामाजिक दायित्व का स्मरण दिलाता है। वे महापुरुष हैं—

1. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी
2. बाबा साहब डा. भीमराव अम्बेडकर
3. बाबू जगजीवन राम।

महात्मा गांधी और बाबा साहब अम्बेडकर पूना पैक्ट के दो स्तम्भ थे, जिस पैक्ट के कारण दलितों को कुछ राहत मिली है। बाबू जगजीवन राम ने दलितों की समस्याओं को उजागर करने के लिए भारतीय दलित साहित्य अकादमी की स्थापना की। यह उनका महान कृत्य है, जिसका परचम आज देश–विदेश में फहरा रहा है। हमारे पूर्वजों ने शिक्षा और संघर्ष का मंत्र दिया है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए इस संस्था ने मंच दिया है। इसे पल्लिवत और पुष्पित हमें करना है। आज की जटिल परिस्थितियों में उपेक्षित और दलितों के प्रति साहित्यकार का दायित्व बढ़ गया है। आज के साहित्यकारों की प्रतिष्ठा बोध अस्पृश्यों के पांव में मेंहदी रचाने में नहीं, बल्कि उनकी देह से टपकते पसीना को पोंछने में होना चाहिए।

सीढ़ीनुमा जाति प्रधान समाज में सभी क्षेत्रों में खास जाति का वर्चस्व रहा है, जिसकी चकाचौंध से यहां का साहित्य भी कुप्रभावित हुआ है। साहित्य ने दर्पण का काम नहीं किया है। जन जागरण के फलस्वरूप देश का साहित्य पूंजीवादी, सर्वहरा, ब्राह्मणवादी और दलित साहित्य में विभाजित हो चुका है। सबसे अधिक उपेक्षित दलित साहित्य है। ऐसी स्थिति में साहित्यकारों का पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि दलित समस्या का हृदयांगम करें एवं उसके समाधान का प्रस्ताव भी प्रस्तुत करें, तभी ''सहितम् भावः साहित्य'' मूर्तरूप में दिखाई देगा।

आजादी के 70 वर्ष बीत जाने पर भी दलितों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक अवस्था में वांछित सुधार नहीं हुआ है। इसका मुख्य कारण सवर्णों की दूषित मानसिकता के कारण दलितों की उपेक्षा है। इस उपेक्षा के कुछ उदाहरण हैं—

सामाजिक उपेक्षा

जाति प्रथा का गठन कर दलितों की हर स्तर पर उपेक्षा की गई है। सबसे अधिक उपेक्षा मनुकाल में हुई और आज भी विद्यमान है। दलितों के मानवाधिकार को छिना गया है। उनके व्यक्तित्व और मनोबल को तोड़ा गया है। यही कारण है कि संत रविदास जी को मन्दिर में वह स्थान नहीं मिल पाया, जो संत तुलसीदास को मिला। हमें समाज से आग्रह करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए थी, बल्कि समाज का दायित्व है कि डा. अम्बेडकर, बाबू जगजीवन राम के. कामराज और ज्ञानी जैल सिंह जैसे महापुरुषों के जन्म दिवस पर भी अन्य महापुरुषों की भांति महत्वपूर्ण

जाति प्रथा के कारण ही दलित अपने विकास के लिए स्वच्छन्द रूप से पेशा या रोजगार नहीं ढूंढ़ पाते हैं। थोपी हुई, काम चलाऊ जातीय हीन पेशा में जीवन गुजार देते हैं और आजीवन गरीबी रेखा से ऊपर नहीं उठ पाते। अतः उन्हें जातिगत हीन पेशा छोड़ना होगा, तभी सामाजिक प्रतिष्ठा मिल पायेगी।

''वैसे तो सामाजिक उपेक्षा ही सभी तरह की उपेक्षाओं की जननी है। सामाजिक कुव्यवस्था के कारण देश की सारी सम्पदा मुट्ठी भर लोगों के हाथों में चली गई। जमीन, उद्योग और व्यापार पर अल्पसंख्यक पूंजीपतियों और सामन्तों का एकाधिकार हो गया और दलित मात्र मजदूर बनकर रह गये। यह कैसी विडम्बना है कि यह राष्ट्र हमारा है, परन्तु राष्ट्र की सम्पत्ति में हमारा हक नहीं है। हम धरती की मां के रूप में सेवा करते रहे हैं, हम उनके छाती से लगे रहे हैं, परन्तु हमें जीने के लिए उनसे दूध नहीं मिला। धरती मां को सम्पत्ति समझने वाले पूंजीपति को सारी सम्पदा मिली। बहुजन गरीबों को दो शाम मजदूरी क्यों नहीं करता, कुली का कार्य क्यों नहीं करता, रिक्शा क्यों नहीं चलाता? उसी तरह दलितों को भी इन कार्यों को छोड़ देना है। और फिर देखिए आपकी तरक्की कैसे बढ़ जाती है।

शैक्षणिक उपेक्षा

वैदिक युग से अर्थात् गुरुकुल पद्धति के कारण राजे–महाराजे एवं ब्राह्मणों के बच्चों को ही शिक्षा पाने का अधिकार रहा। समाज के बहुसंख्यक शिक्षा से वंचित रहे। जब मानसिक विकास ही अवरुद्ध कर दिया गया तो स्वभावतः आर्थिक और राजनैतिक विकास भी रुक गया। डा. अम्बेडकर के शब्दों में ''शिक्षा के बिना न हम संगठित हो सकते हैं न संघर्ष कर सकते हैं।'' बुद्धिजीवी होने के नाते हमारा उत्तरदायित्व बनता है कि उपेक्षित समाज के कल्याण हेतु शिक्षा को झकझोर दें। समाज शिक्षा के लिए समान वातावरण और समान विद्यालय आवश्यक है। पांच वर्ष से चौदह वर्ष की उम्र तक के सभी बच्चों के लिए मुफ्त पढ़ाई, मुफ्त भोजन और मुफ्त कपड़ा और आवास का प्रबन्ध करना

बलिदान

तुम मानव अधिकार की बातें करते हो यार!
तो फिर मानव व अधिकार की
परिभाषा से क्यों डरते हो यार?
क्या 'दलित' मानव नहीं हैं?
जो हजारों सालों से छले जाते रहे हैं
राजा–महाराजा और सामन्त–साहूकारों के
हुक्मनामों के नीचे
उनके अय्यासी, फरेबी, झूठे दंभ और षड्यंत्रों के पीछे
उन्हें किलों / बांधों /
तालाबों के निर्बाध निर्माण में
'देव बलि' के बहाने
जिन्दा नींव में दफनाया गया
या फिर
बलिदान के नाम पर
ऊपर से
गिराकर मारा गया।
फिर / उन्हें महिमा मंडित कर
एक जमीन का टुकड़ा
उनके परिवार को देकर
क्या दिखाना चाहते हो कि
उसने स्वयं बलिदान दिया है
बामनों के कहने पर
तुमने
कोई पाप नहीं किया है। •

– डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर

कार्यक्रम रखे जाएं और इतिहास के पृष्ठों पर इन्हें भी उचित स्थान दिए जाएं। आज आवश्यकता है समता की कसौटी पर परखने की। हमें समान वातावरण और समान अवसर चाहिएं। समाज में समान आचार–व्यवहार लागू करने के लिए सामाजिक क्रांति अनिवार्य है।

यदि जाति विहीन समाज की स्थापना कर दी जाए, तो दलितों की 75 प्रतिशत समस्या स्वतः समाप्त हो जायेंगी। जाति समाप्त कर दी जाए तो सामाजिक द्वेष और बेइमानी भी स्वतः समाप्त हो जाएगी।

चोटी के नेताओं और विद्वानों को कहते–सुनते हैं कि अमुक व्यक्ति जाति के नाम पर समाज को तोड़ रहा है, द्वेष फेला रहा है, परन्तु वे यह नहीं कहते कि जाति ही तोड़ दो ताकि समाज नहीं टूटे और द्वेष न फैले। वास्तव में वैसे व्यक्ति का बाहरी और भीतरी रूप एक नहीं होता। वे एकता नहीं चाहते, बल्कि विभिन्नता चाहते हैं ताकि जाति के नाम पर उनका मान और वर्चस्व बना रहे। अब ऐसा नहीं होगा, दलितों को संगठित होने से स्वतः उनका वर्चस्व समाप्त होगा। अभी देश उसी दिशा में अग्रसर है।

खाना नहीं मिलता है, जिसके कारण हमारी पीढ़ी कमजोर हुई है, हमारा राष्ट्र कमजोर हुआ है।

अतः हमें तय करना होगा कि कम से कम तीन शाम खाना, कपड़ा और एक मकान (महल नहीं) दलितों को अनिवार्य रूप से चाहिए। सारी सरकारी जमीन, रेलवे की जमीन को दलितों को आवंटित कराने के लिए सत्याग्रह करना होगा। दुर्भाग्य यह है कि पूंजीपतियों और जमींदारों को गैर मजरुआ जमीन बन्दोबस्त की गई है, परन्तु दलितों, भूमिहीनों को नहीं। भारतीय अर्थव्यवस्था का व्यापारीकरण हो रहा है। अतः दलितों के विकास हेतु सरकारी ठेकेदारी, एजेंसी इन्हें मिलना चाहिए। दलित उत्थान हेतु नयी औद्योगिक नीति बनानी होगी। समाजसेवियों का कर्तव्य बनता है कि दलित को मजदूरी और कृषि की ओर से व्यवसाय की ओर प्रेरित करें। दूसरों की बहुत सेवा कर चुके हैं, अब अपना व्यापार करें। व्यापार में प्रतिष्ठा भी है और पैसा भी। जिस तरह शिक्षा के लिए जागृति पैदा की गई है, उसी तरह व्यापार के लिए जागृति पैदा करनी है। मजदूरी करने के संस्कार को छोड़ दें। गरीब सवर्ण खेतों में

होगा। इसके लिए अन्य खर्च की कटौती करनी होगी। भावी पीढ़ी की शिक्षा के लिए हमें अधिक पीड़ा सहनी होगी। इसके लिए हर गांव और शहर में छात्रावासयुक्त विद्यालय हों, जिसमें 5 से 14 वर्ष के बच्चों को मुफ्त सभी सुविधा प्रदान की जाएं। ऐसी शैक्षणिक व्यवस्था के पश्चात ही हम सही मेधा और एकता प्राप्त कर सकेंगे।

दलित साहित्यकारों एवं समाजसेवियों से अनुरोध है कि सर्वांगीण विकास हेतु असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह जैसे हथियार उठाने के लिए दलितों को प्रेरित करें। हमारी निम्नलिखित मांग है–

1. हमें न्यूतनम रोजगार की गारंटी चाहिए।
2. न्यूनतम आवास की गारंटी चाहिए।
3. प्रजातंत्र की रक्षा हेतु वोट गिरानी की गारंटी चाहिए। इसके लिए परिचय–पत्र और चलन्त बूथ अनिवार्य करने हेतु सत्याग्रह करें।
4. सरकारी जमीन दलितों को आवंटित की जाए।
5. दलितों के लिए औद्योगिक प्रोत्साहन एवं विशेष पूंजी की व्यवस्था होनी चाहिए।•

स्वामी, सम्पादक/ प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर द्वारा वन्दना आफसेट प्रिन्टर्स, A-9 सराय पीपलथला एक्सटेंशन, दिल्ली-33 में मुद्रित तथा रजि. कार्यालय : 233 टैगोर पार्क, माडल टाउन, दिल्ली-9 से प्रकाशित। ❑ सह सम्पादक - श्रीमती त्रिलोचन सुमनाक्षर ❑ व्यवस्थापक : जय सुमनाक्षर, फोन : 27421449, मो. 9810278936 **Email-sumanakshar@ymail.com**

नोट : हिमायती में प्रकाशित रचनाओं के लिए सम्पादक की सहमति जरूरी नहीं। हिमायती से सम्बन्धित किसी भी कानूनी कार्रवाई का क्षेत्र दिल्ली न्यायालय तक ही सीमित है।

सम्पादकीय कार्यालय : बी 3/9, दूसरी मंजिल, माडल टाउन-1, दिल्ली-110009